AMOGHVARTA
ISSN : 2583-3189

विद्यापति की नचारी और महेशवाणी में शिव का लोकनायक स्वरूप

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. रीता कुमारी
सहायक प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग
किशोरी सिन्हा महिला महाविद्यालय
औरंगाबाद, बिहार, भारत

शोध सार

विद्यापति की पदावली में शिव मात्र एक पौराणिक देवता नहीं, बल्कि मिथिला के जन–जीवन के एक अभिन्न सदस्य हैं। महेशवाणी और नचारी विद्यापति द्वारा रचित वे गीत हैं जिनमें शिव का मानवीकरण किया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि कैसे मिथिला की लोक–संस्कृति ने ईश्वरीय गरिमा को त्यागकर शिव को लोकनायक के रूप में स्वीकार किया है। विद्यापति की महेशवाणी और नचारी शिव को मंदिर के गर्भगृह से निकालकर खेत–खलिहानों और घरों की चौखट तक ले आती हैं। ईश्वर भी मनुष्य की तरह दुखी हो सकता है, गरीबी झेल सकता है। भक्ति का अर्थ केवल चरणों में गिरना नहीं, बल्कि शिव के साथ तकरार करना भी है। शिव का यह लोकनायक स्वरूप मिथिला के लिए एक दार्शनिक आधार है। शिव के माध्यम से विद्यापति ने उन सामाजिक समस्याओं को व्यक्त किया जो मिथिला के सामान्य जनजीवन का हिस्सा थीं। विद्यापति की पदावली के सूक्ष्म और गहन अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि यह रचना केवल एक कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियों का संग्रह नहीं, बल्कि 14वीं–15वीं शताब्दी की मिथिला की सांस्कृतिक और सामाजिक धड़कनों का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है। विद्यापति ने देसिल बयना (जनभाषा) को अपनाकर जिस लोक–संस्कृति को वाणी दी, वह आज भी मिथिला के जनमानस में महेशवाणी, नचारी, सोहर और श्समदाउनश के रूप में जीवित है। प्रस्तुत शोध–पत्र में हम देखते हैं कि कैसे मिथिलांचल के तत्कालीन पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियों को विद्यापति ने अपने काव्य का केंद्रबिंदु बनाकर, जहाँ एक ओर तत्कालीन समाज की वर्जनाओं को प्रतिबिंबित किया, वहीं दूसरी ओर लोक–धार्मिकता को एक मानवीय और सरल स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने मिथिला की लोक–संस्कृति को न केवल संरक्षण दिया, बल्कि उसे एक साहित्यिक ऊँचाई भी प्रदान की। वस्तुत:, विद्यापति का साहित्य परंपरा और आधुनिक संवेदनाओं का ऐसा सेतु है, जो मिथिला की अस्मिता को विश्व–साहित्य के पटल पर गौरवशाली स्थान प्रदान करता है।

मुख्य शब्द

नचारी, महेशवाणी, सोहर, समदाउन, लोकनायक, लोक–रंजन.

प्रस्तावना

विद्यापति के समय में मिथिला में शाक्त (शक्ति उपासना) और शैव (शिवोपासना) परम्पराएँ प्रभावी थीं। मिथिला में शिव को केवल देव नहीं, बल्कि परिवार के एक सदस्य (अघड़, गृहस्थ) के रूप में मानने की लोक–परंपरा थी। विद्यापति ने ''नचारी'' और ''महेशवाणी'' के माध्यम से मिथिला के इसी लोक–धार्मिक विश्वास को जन–जन तक पहुँचाया।

विद्यापति की ''पदावली'' में भी शिव केवल देवाधिदेव महादेव नहीं हैं, बल्कि वे मिथिला के जनमानस के ''कुल–देवता'' और ''परिजन'' हैं। विद्यापति ने ''नचारी'' (शिव–गीत) और ''महेशवाणी'' के माध्यम से शिव को गृहस्थ के रूप में प्रस्तुत किया है, जो मिथिला के एक आम गृहस्थ की जीवन–पद्धति को दर्शाता है। ''नचारी'' और ''महेशवाणी'' मिथिला की लोक–धार्मिकता के वे स्तंभ हैं, जो ईश्वर को मंदिर के गर्भगृह से निकाल कर खेत–खलिहानों और गृहस्थी के संघर्षों में ले आते हैं। यहाँ भक्ति ''स्तुति'' से आगे बढ़कर ''संवाद'' और कभी–कभी ''उपालंभ'' (शिकायत) का रूप ले लेती है।

''महेशवाणी'' का शाब्दिक अर्थ है ''महेश (शिव) की वाणी'' या ''महेश को समर्पित वाणी''। यह मैथिली लोक–संगीत की एक विशिष्ट विधा है। महेशवाणी में शिव का स्वरूप ''सौम्य'' और ''गृहस्थ'' है। यह विधा यह स्वीकार करती है कि शिव इस जगत के नियंता तो हैं, किंतु वे मनुष्यों के सुख–दुख और अभावों के भागीदार भी हैं।

इसका मुख्य उद्देश्य शिव की स्तुति के माध्यम से भक्त की आंतरिक व्यथा को शिव तक पहुँचाना है। इसमें ''भक्ति'' से अधिक ''आत्मीयता'' का भाव होता है। महेशवाणी में शिव–पार्वती को एक पति–पत्नी के रूप में देखा जाता है जिसमें पारिवारिक कलह, प्रेम, लाचारी और सामंजस्य का ऐसा वर्णन होता है जो मिथिला के हर घर की कहानी प्रतीत होती है।

''नचारी'' शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ है– ''न+चारी'', अर्थात् जिसका कोई और चारा (आश्रय) न हो। मिथिला में जब अकाल, बीमारी या पारिवारिक विपत्ति आती है, तो ''नचारी'' गायी जाती है। यह ईश्वर को ''याद दिलाने'' का एक माध्यम है।

दार्शनिक रूप से नचारी लोक–शरणागति (पूर्ण आत्मसमर्पण) की अवस्था है। जब भक्त दुनिया के सभी भौतिक आश्रयों से निराश हो जाता है, तब वह शिव की शरण में जाता है।

नचारी के गीतों में शिव की स्तुति कम और अपनी दीन–हीन दशा का वर्णन अधिक होता है। यहाँ शिव भक्त के ''दाता'' और ''अभिभावक'' दोनों होते हैं।

नचारी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भक्त शिव से शिकायत करने का अधिकार रखता है। यह ''भक्ति'' से अधिक ''संबध'' की भाषा है, जहाँ भक्त अपने दुखों को ईश्वर के सामने सहजता से रखता है।

शिव का मानवीकरण और ''लोकरंजक'' स्वरूप

''बेरि बेरि अरे सिब तोहि कहलहुँ, किरिषि करिअ मन लाए।
रहिअ निसंक भीख मँगइते सब, गुन गौरव दुर जाए।।
निरधन जन बोलि सब उपहासए, नहिं आदर अनुकम्पा।
तोहें सिब आक धतुर फूल पाओल, हरि पाओल चम्पा।।
खटँग काटि हर हर जे बनाबिअ, तिरसुल तोड़ि करु फार।
बसहा धुरन्धर हर लए जोतिअ, पाटिअ सुरसरि धार।।''

यहाँ विद्यापति ने शिव को मिथिला के सामान्य से भी सामान्य गृहस्थ का रूप दिया है, जिसे कृषि का महत्त्व समझाते हुए पत्नी कहती है– हे शिव! मैंने तुमसे बार–बार कहा है कि मन लगाकर खेती करो और निःशंक रहो। भीख माँगने से सब गुण– गौरव नष्ट हो जाते हैं। निर्धन व्यक्ति जानकर सब उपहास करता है और कोई भी न तो उपकार करता है, न कृपा करता है। तुम तो हे शिव! फूलों में आक और धतूर पाते हो, और विष्णु चंपा का फूल पाते हैं। सोंटा को काटकर हल बनाइए और त्रिशूल को तोड़कर फाल बना लीजिए, बसहा बैल जोतने में बहुत पटु है तथा गंगा की धारा से उसे सिंचित कीजिए।

विद्यापति ने शिव को एक ऐसे ''लोकनायक'' के रूप में स्थापित किया है जो न तो ऐश्वर्यशाली हैं और न ही पूर्णतः सर्वशक्तिमान प्रतीत होते हैं। वे मिथिला के उस आम किसान और जोगी की तरह हैं जो अभावग्रस्त है।

''कनखल मडुवा, कतहु ने छइ घर, भिक्षा माँगि के खायब।
जियतहु दरिद्र, मरलहु दरिद्र, कहु न कोन विधि न्यायब।।''

यहाँ ''कनखल'' (श्मशान) को ही उनका घर माना गया है। शिव का ''भिक्षा मांगकर खाना'' मिथिला के उस समाज को स्वीकार्य है जो स्वयं गरीबी से जूझ रहा है। विद्यापति का यह शिव, भक्त को यह संदेश देता है कि गरीबी ईश्वर की सेवा में बाधा नहीं है। यह ''दरिद्रता का महिमामंडन'' नहीं, बल्कि ''अभाव में ईश्वर की उपस्थिति'' का अनुभव है।

शिव की वेशभूषा देख पार्वती की सखियाँ उपहास करती हुई कहती हैं:

''केहने छथि महादेव, ओहि ब्याहक ठाट।
माथ पर जटा–जूट, हाथ में कपाल–पाट।।
बाघ के छाल ओढ़ि, बदन पर भभूत मलि।
देखि–देखि हसथि सखी, जे आबि गइली चलि।।''

पार्वती की सखियाँ उनसे पूछती हैं कि आपके पति महादेव की बारात का ठाठ कैसा है? उनके सिर पर जटाएँ हैं, हाथ में भिक्षा पात्र (कपाल) है और शरीर पर बाघ की खाल और राख (भभूत) लपेटे हुए हैं। उन्हें देखकर सभी सखियाँ हंस रही हैं। यहाँ शिव के ''अघड़'' स्वरूप पर एक लोक–हास्य है, जो उनकी सादगी और सांसारिक मोह–माया से मुक्ति को दर्शाता है।

पार्वती का उपालंभ और गृहस्थी का संघर्ष

महेशवाणी के अधिकांश पदों में पार्वती (गौरी) के माध्यम से एक मैथिल गृहणी की व्यथा को व्यक्त किया गया है। यह शिव को एक ''लापरवाह पति'' के रूप में चित्रित करता है।

''गौरी पुछथि, महादेव कतहु रहलहु? भिक्षा मांगि कतहु न अइलहु।
बच्चाक भोजन नहि, घरक स्थिति मलीन, कहु स्वामी अब कोन दिन अइलहु।।''

पार्वती (गौरी) महादेव से प्रश्न कर रही हैं ''हे महादेव! आप कहाँ रहे ? भिक्षा मांगकर कुछ भी नहीं लाए? न तो बच्चों के लिए भोजन है और न ही घर की स्थिति ठीक है, सब कुछ मलीन (बदहाल) है। हे स्वामी! आप ही बताइए, अब यह घर कैसे चलेगा?''

''कहनु महादेव, अब घरक कोन रीति।
बालक सब भूखे छथि, कतहु न मिलैय भीती।।
योगी भेलहु आप, हमर कोन अपराध?
अन्नक बिना एहि घर, होतैय सब बर्बाद।।''

पार्वती कहती हैं हे महादेव! अब घर का क्या होगा? बालक भूखे हैं और कहीं से भी भोजन नहीं मिल रहा। आप योगी बन गए, इसमें मेरा क्या अपराध है? भोजन के बिना यह घर बर्बाद हो जाएगा। यह पद घर चलाने में असमर्थ पति के प्रति एक पत्नी की विवशता और वेदना का मार्मिक चित्रण है।

''भांग धतूरा के पान, महादेव के बड़ मान।
घर में अन्नक बास नहि, जोगी करथि स्नान।।
गंगा के लहर मनि, जटा में कइलाह बास।
हमरा सभक दुःख, कतहु न करथि पास।।''

महादेव को भांग और धतूरा बहुत प्रिय है। घर में अनाज का दाना नहीं है, फिर भी वे मस्त होकर गंगा में स्नान कर रहे हैं। वे अपनी जटाओं में गंगा को धारण करते हैं, पर हमारे दुखों की उन्हें कोई परवाह नहीं है।

विद्यापति–पदावली में शामिल महेशवाणी और नचारी के ऐसे पदों में पार्वती का संवाद देवी का नहीं, एक स्त्री का है जो परिवार के पोषण के लिए चिंतित है। यह ''मिथिला की संयुक्त परिवार– प्रणाली'' की सबसे बड़ी चुनौती ''अभाव'' को दर्शाता है। विद्यापति ने शिव–पार्वती के माध्यम से मिथिला के हर उस घर की व्यथा गायी है, जहाँ पुरुष (स्वामी) अपने उत्तरदायित्वों को लेकर उदासीन या असहाय है।

शिव के लोकनायक स्वरूप में प्रतीकात्मकता

विद्यापति की पदावली में शिव की प्रतीकात्मकता केवल धार्मिक संकेतों का समूह नहीं है, बल्कि यह मिथिला के जनमानस के संघर्षों, अभावों और जीवन–दर्शन का एक प्रतीकात्मक अनुवाद है। यहाँ प्रतीकों का चयन अत्यंत लोक–उन्मुखी है।

भिक्षाटनः अभाव और सामाजिक अंतर्निर्भरता का प्रतीक

''भोलानाथ के छथि उपाय, नहि घर नहि द्वार।
भिक्षा माँगि के आनथि सब, कतहु न करथि विचार।।
गौरी पूछथि महादेव, अब कोन दिन हएत निबाह?
विद्यापति कहथि महादेव, देखु ई हमर आह।।''

''सभक स्वामी भेलहु महादेव, हमर कतहु न सुनथु पुकार।
बालक सब भूखे छथि, कतहु न मिलैय आहार।।
अहाँ त योगी भेलहु हिमालय, हम भेलि अबला नारि।
घरक स्थिति देखु हे स्वामी, दुखे भेलि अन्हारि।।''

शिव का ''भिक्षाटन'' (भिक्षा मांगना) मिथिला की लोक–संस्कृति में सबसे सशक्त प्रतीक है। भिक्षाटन यह दर्शाता है कि ईश्वर भी ''अकिंचन'' (कुछ भी न होने वाला) हो सकता है। यह ''अकिंचनता'' का प्रतीक है। मिथिला के ग्रामीण समाज में भिक्षाटन एक गरिमामय सामाजिक क्रिया थी, जहाँ गृहस्थ का धर्म साधु–संतों का पोषण करना था। शिव का भिक्षुक होना यह बताता है कि ईश्वर समाज से कटा हुआ नहीं, बल्कि समाज पर आश्रित है। यह ''परस्पर निर्भरता'' का सिद्धांत है, जहाँ ईश्वर और भक्त के बीच का अंतर मिट जाता है।

जटाजूटः प्रकृति और वैराग्य का प्रतीक

शिव की जटाएँ मिथिला के उन वनवासी और संन्यासी समुदायों का प्रतीक हैं, जो समाज की मुख्यधारा से बाहर होकर भी उसे आध्यात्मिक दिशा देते रहे हैं। जटाएँ अव्यवस्था और मुक्ति का संगम हैं। मिथिला के लोक–मानस में ''जटाधारी'' वह व्यक्ति है जो सांसारिक मोह–माया के ''सुलझे हुए'' रिश्तों से परे है।

सांस्कृतिक विश्लेषण

विद्यापति की पदावली में जटाओं का उल्लेख शिव की ''अक्खड़पन'' या ''मस्तमौला'' छवि को पुष्ट करता है। यह उस ''लोक–तत्व'' का प्रतीक है जो बाहरी दिखावे (समाज के मापदंडों) को नकारता है। यह जटाएँ उन सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ने का प्रतीक हैं जो पुरुष को ''गृहस्थ'' के साँचे में बाँधती हैं।

''सदा शिव संगे कतहु न जाइ, भांग–धतूरक करथि आहार।
अन्नक दाना कतहु न पावै, जटाक ओट में होइछ निस्तार।।
कनखल वासी, भूत के नाथ, मसान कतहु बनि गेल घर।
विद्यापति कहथि सुनु महादेव, घरक हाल भेल अछि भर।।''

यहाँ शिव को ''भूतों के नाथ'' (भूतपति) और ''मसानवासी'' के रूप में दिखाया गया है। यह उनकी ''अति–साधारण'' और ''विद्रोही'' छवि है। वे समाज की वर्जनाओं (जैसे श्मशान में न रहना) को तोड़कर लोक–विद्रोही नायक बन जाते हैं।

''कार्तिकेय, गणेश भूखल छथि बड, कहु अब के करय उपकार?
अहाँ महादेव वन–वन डोलहु, घरक कतहु न लेलहु भार।।
कपाल ओढ़थि, जटा सुकावथि, देखु इ घरक हाल।
गौरीक नयन सँ अंसु न छूटे, देखि दरिद्रक जाल।।''

यहाँ शिव का स्वरूप एक ''उदासीन पिता'' का है। यह पद यह विविधता दर्शाता है कि कैसे लोक–भक्ति में ईश्वर को ''खरा–खोटा'' सुनाया जा सकता है। इसमें पारिवारिक जिम्मेदारी का अभाव शिव को एक आम आदमी की तरह ''दोषी'' बनाता है।

भभूत (राख)ः नश्वरता और समानता का प्रतीक

शिव का शरीर पर भभूत मलना मिथिला की लोक–चेतना में सबसे गहरा दार्शनिक प्रतीक है। भभूत ''नश्वरता'' का प्रतीक है सब कुछ राख हो जाना है। यह मिथिला की उस जीवन–दृष्टि को दर्शाता है जो मानती है कि मृत्यु ही जीवन का अंतिम सत्य है।

समानता का संदेश: भभूत का यह भी प्रतीक है कि धनी और निर्धन दोनों अंततः भस्म ही होने हैं। शिव का भभूत मलना यह संदेश देता है कि उनके दरबार में वर्ग–भेद का कोई स्थान नहीं है। मिथिला के समाज में जहाँ वर्ण–व्यवस्था और ऊँच–नीच के कठोर बंधन थे, शिव का यह रूप एक ''लोकतान्त्रिक'' प्रतीक के रूप में उभरता है, जो सबको एक समान राख की परत में ढक लेता है।

''केहने सजि क' अइलाह महादेव, सखी देखु न ठाठ।
कान में सांप, भस्म के लेपन, माथ पर जटा के पाठ।
अंग–अंग पर विष के लहर, नहि कतहु श्रृंगार।
हँसि–हँसि सखी सब पूछथि गौरी, एहन वर के कतहु छइ भार?''

यहाँ ''हास्य'' का पुट है। लोक–परंपरा में हास्य के बिना कोई भी नायक पूर्ण नहीं होता। शिव का यह रूप उन्हें ''दिव्य'' से हटाकर ''हास्य–नायक'' के निकट लाता है, जिससे भक्त उनके साथ सहज महसूस करता है।

''नयनक तारा, भस्म के धारा, काल के कपाल में वास।
त्रिशूल हाथे, बाघक छाला, दुखे के करथि नास।।
सब सुख छोरी, जोगी भेलहु, संसारक त्यागि के मोह।
विद्यापति कहथि महादेव, अहाँक नयन में छइ न कोनो छोह।।''

यह पद शिव की ''दार्शनिक कठोरता'' को दर्शाता है। यहाँ शिव भावशून्य हैं। यह विविधता महत्वपूर्ण है क्योंकि यह दिखाती है कि शिव जहाँ एक ओर ''गृहस्थ'' हैं, वहीं दूसरी ओर वे संसार का त्याग करने वाले ''परम योगी'' भी हैं।

विद्यापति ने इन प्रतीकों को जोड़कर शिव को एक ऐसा व्यक्तित्व दिया है जो विद्रोही है और समाज के दिखावटी नियमों को नहीं मानता है। साधारण भी है, क्योंकि उसकी वेशभूषा आम ग्रामीण या जोगी जैसी है। सहानुभूतिपूर्ण भी है, जो अभावों में भी प्रसन्न है; और इसीलिए वह दुःख में डूबे हुए आम आदमी का ''नायक'' भी है।

विद्यापति के शिव की यह विविधता कहाँ एक ओर वे ''भूतों के नाथ'' और ''श्मशान–वासी'' हैं, तो दूसरी ओर ''संसार त्यागने वाले योगी'' और ''बच्चों के पिता''। यह विविधता ही उन्हें मिथिला के लोक–मानस में ''पूर्ण'' बनाती है। वे एक ऐसे ''बहुआयामी नायक'' हैं, जो भक्त के सुख में ''पति'' हैं, दुख में ''सहयोगी'' हैं, और संकट में ''रक्षक'' हैं। यह ''लोक–धार्मिकता'' की वह उच्चतम परिणति है, जहाँ ईश्वर का कोई एक निश्चित साँचा नहीं है, बल्कि वह भक्त की आवश्यकता के अनुसार अपना रूप बदल लेता है।

विद्यापति की पदावली में शिव केवल ''आराध्य'' नहीं, बल्कि ''सह–यात्री'' हैं। उनका ''जटाजूट'' (अटपटापन), ''भस्म'' (नश्वरता), ''भांग'' (सांसारिक विरक्ति) और ''अभाव'' (गरीबी) मिलकर एक ऐसे नायक की रचना करते हैं, जो मिथिला के प्रत्येक गरीब किसान की पीड़ा को अपने गले में धारण किए हुए है।

निष्कर्ष

विद्यापति केवल एक कवि नहीं, अपितु मिथिला की सांस्कृतिक पहचान के ध्वजवाहक हैं। 14वीं–15वीं शताब्दी के जिस कालखंड में उन्होंने रचनाएँ कीं, वह मिथिला के इतिहास में राजनीतिक स्थिरता और सांस्कृतिक उत्कर्ष का युग था। विद्यापति का महत्व इस बात में निहित है कि उन्होंने संस्कृत के आभिजात्य को त्यागकर लोकभाषा ''देसिल बयना'' (मैथिली–अवहट्ट) को अपनी काव्य–भाषा के रूप में चुना। उनका काव्य मिथिला की मिट्टी से जुड़ा है; पदावली में वर्णित महेशवाणी और नचारी के पद केवल साहित्यिक सौंदर्य नहीं हैं, बल्कि वे उस समय के सामाजिक ताने–बाने और लोक–संस्कृति के प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं। विद्यापति का साहित्य परंपरा को संजोते हुए भी मानवीय संवेदनाओं को केंद्र में रखता है।

मिथिला की लोक–धार्मिकता अन्य क्षेत्रों की तुलना में विशिष्ट है। यहाँ धार्मिकता का अर्थ केवल मंदिरों या शास्त्र–सम्मत अनुष्ठान नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर छोटे–बड़े कार्य में व्याप्त एक ''भाव'' है। मिथिला की लोक–धार्मिकता में आराध्य को ''देवता'' मानने के साथ–साथ श्परिजनश मानने की प्रवृत्ति है। विद्यापति की ''नचारी'' (शिव–गीत) और ''महेशवाणी'' इसी भावना का प्रतीक हैं, जहाँ शिव को एक ''गृहस्थ'' के रूप में देखा जाता है। मिथिला के जनमानस में भक्ति का अर्थ ईश्वर के सामने दंडवत होना ही नहीं है, बल्कि उनसे प्रेम करना, शिकायत करना और कभी–कभी ''उपालंभ'' (तकरार) करना भी है। लोक–धार्मिकता का यह स्वरूप आडंबरहीन और अत्यंत सरल है।

मिथिला में प्रत्येक ऋतु के साथ कोई न कोई लोक–पर्व जुड़ा है। शिव का ''अघड़'' (मस्तमौला) स्वरूप और देवी शक्ति की उपासना, यहाँ की लोक–धार्मिकता के दो प्रमुख स्तंभ हैं। विद्यापति ने इन्हीं परंपराओं को अपनी पदावली में पिरोया है।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि विद्यापति की ''नचारी'' और ''महेशवाणी'' मिथिला की लोक–धार्मिकता के तीन मुख्य आधार तय करती हैं:

क. ईश्वर से आत्मीयता, अर्थात् ईश्वर से डरने के बजाय उससे तकरार करने की संस्कृति।

ख. अभाव में भी उत्सव, अर्थात् गरीबी में भी शिव का हँसना, मिथिला की उस जीवन–दृष्टि को दर्शाता है जो अभावों के बावजूद ''जीवंत'' रहना सिखाती है।

ग. स्त्री–केंद्रित भक्ति, अर्थात् महेशवाणी के माध्यम से विद्यापति ने घर की स्त्री को भक्ति का केंद्र बना दिया, जो अपने परिवार के कष्टों को ईश्वर तक पहुँचाने का माध्यम बनी।

मिथिला की लोक–धार्मिकता में स्त्रियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। घर–परिवार की सुख–शांति, संतान का जन्म और विवाह जैसे अवसरों पर गाए जाने वाले गीत ही उनकी प्रार्थनाएँ हैं। विद्यापति ने इन गीतों को साहित्य में प्रतिष्ठित कर मिथिला की लोक–स्त्री की धार्मिकता को अमर बना दिया और साथ ही महादेव को मिथिला का लोकनायक।

संदर्भ सूची

1. बेनीपुरी, रामवृक्ष (संपादक) (1958) *विद्यापति–पदावली.* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. नगेन्द्र, संपादक (1962) *विद्यापति की पदावली.* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
3. शरण, श्रीरामलोचन (संपादक) (1983) *विद्यापति की पदावली.* पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस, पटना।
4. मिश्र, जयकांत (1976) *History of Maithili Literature.* साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली।
5. ठाकुर, उपेन्द्र (1972) *मिथिला का सांस्कृतिक इतिहास.* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।
6. चौधरी, रामानाथ (1985) *विद्यापति के काव्य में लोक–तत्व.* लोक–संस्कृति शोध संस्थान, पटना।
7. झा, अमरनाथ (1995) *मैथिली साहित्य की विकास–यात्रा.* भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।
8. मिश्र, भोलानाथ (2002) *विद्यापति के पदों में लोक–संस्कृति.* मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा।

––==00==––